

अपभ्रंशका एक अचर्चित चरितकाव्य

डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री

अपभ्रंशके चरितकाव्योंकी सुदीर्घ परम्परा मिलती है, जिसका विकास प्राकृतके विकसनशील पौराणिक काव्योंसे हुआ जान पड़ता है। इन चरितकाव्योंमें महापुरुषके जीवन-विकासका वर्णन निबद्ध मिलता है। नियोजित घटनाओंमें क्रमबद्धता और पौराणिक परम्पराका यथेष्ट सन्निवेश है। इसलिए लगभग सभी चरितकाव्योंका शिल्प समान है। आकारकी दृष्टिसे ही नहीं साहित्यिक दृष्टिसे भी आलोच्य रचना महान् है। सम्पूर्ण काव्य १३ सन्धियोंमें निबद्ध है। और इसके रचनाकार है—महिन्द्र। उनकी इस कृतिका नाम है—सांतिणाहचरित।

अपभ्रंशके इस अचर्चित चरितकाव्यका सर्वप्रथम परिचय पं० परमानन्दजी शास्त्रीने जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रहमें निम्नलिखित शब्दोंमें दिया था^१—

८७वीं प्रशस्ति सांतिणाहचरितकी है, जिसके कर्ता कवि महिन्दु या महाचन्द्र हैं। प्रस्तुत ग्रन्थमें १३ परिच्छेद हैं जिनकी आनुमानिक श्लोक संख्या पाँच हजारके लगभग है, जिनमें जैनियोंके सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ चक्रवर्तीका चरित्र दिया हुआ है।

अभी तक यह चरितकाव्य हस्तलिखित रूपमें एक अप्रकाशित रचना है। इसकी एकमात्र प्रति श्री दि० जैन सरस्वती भण्डार, धर्मपुरा, दिल्लीमें उपलब्ध है। यह हस्तलिखित १५३ पत्रोंकी रचना है। इसका अन्तरंग परिचय इस प्रकार है—

सर्वप्रथम जिन-नमस्कारसे काव्य प्रारम्भ होता है। नमस्कारमें चौबीसों तीर्थंकरोंको वन्दन किया गया है। तदनन्तर सरस्वतीकी वन्दना की गयी है। आत्म-विनय प्रकाशनके साथ ही कवि अपनी रचनाके सम्बन्धमें प्रकाश डालता हुआ कहता है कि मैंने कवि पुष्पदन्तके महापुराणके अन्तर्गत श्री शान्तिनाथ तीर्थंकरका यह चरित सुनकर रचना की है।

कइ पुष्पयन्त सिरि मह पुराण,
तहु मज्झि णिसिउमइ गुणणिहाणु ।
चरियउ सिरि संतिहु तित्थणाहु ।
अह णिविडु रइउ गुणगण अथाहु ।

यही नहीं, कवि आत्म-विनय प्रकट करता हुआ कहता है कि काव्यके रूपमें जो कुछ कह रहा हूँ वह तुच्छ बुद्धिसे। वास्तवमें खलजनके समान यह अज्ञानका विस्तार है। उसके ही शब्दोंमें—

बोलिज्जइ कव्वंकिय मएण, महु तुच्छबुद्धि खलयण अएण ।

तथा—

गंभीरबुद्धि दुल्लहु ण होइ, सो तुच्छ बुद्धि सुलहु ण जोइ ।
बुहयणहु जि एहु सहाउ हुंति, सव्वह हिययत्तणु चित्तवन्ति ।

१. पं० परमानन्द जैन शास्त्री : जैन-ग्रन्थ प्रशस्ति-संग्रह, दिल्ली, १९६३, पृ० १२३

अनन्तर सज्जन-दुर्जन वर्णन है। दुर्जन-वर्णनमें कविकी उक्ति है कि जिस प्रकार पित्तका रोगी सदा सभी वस्तुओंमें कड़वेपनका स्वाद लेता है इसी प्रकार दुर्जन भी मधुर काव्यरचनाको रसहीन समझते हैं। दोष देखना ही उनका स्वभाव है। दूसरेके दोष देखनेमें वे पिशुनस्वभावके होते हैं।

कविने पूर्ववर्ती अनेक कवियोंका उल्लेख किया है। उन कवियोंके नाम हैं—अकलंक स्वामी, पूज्यपाद, इन्द्रनन्दी, श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती, चतुर्मुख, स्वयम्भू, पुष्पदन्त, मुनि यशःकीर्ति, पंडित रङ्गधू, गुणभद्र-सूरि, और सहणपाल।

अकलंक सामि सिरि पायपूय, इँदाइ महाकइ अट्ट हूय।
सिरि नेमिचंद सिद्धंतियाइ, सिद्धंतसार मुणि नविवि ताइ।
चउमुहु सुयंभु सिरि पुप्फयंतु, सरसइ णिवासु गुणगण महंतु।
जसकित्ति मुणोसरु जसणिहाणु, पंडिय रङ्गधू कइ गुण भमाणु।
गुणभद्रसूरि गुणभद्र ठाणु, सिरि सहणपालु बहु बुद्धि जाणु।

पूर्वकवियोंके कीर्तनके उपरान्त कवि अपनी अज्ञानताको स्पष्ट प्रकट करता हुआ कहता है कि मैंने शब्द-शास्त्र नहीं देखा, मैं कर्ता, कर्म और क्रिया नहीं जानता। मुझे जाति (छंद), धातु और सन्धि तथा लिंग एवं अलं-कारका ज्ञान भी नहीं है। कवि के शब्दोंमें—

णउ दिट्ठा णउ सेविय सुसेय, भइं सहसत्थ जाणिय ण भेय।
णो कत्ता कंभु ण किरिय जुत्ति, णउ जाइ धाउ णवि संधि उत्ति।
लिङ्गालंकारु ण पय समत्ति, णो वुज्झिय मइ इक्कवि विहत्ति।
जो अमरकोसु सो मुत्तिठाणु, णाणिउ मइ अण्णु ण नाम माणु।
णिग्घंटु वियाणिउ वणि गइंदु, सुछंदि ण ढोइउ मणु मइंदु।
पिङ्गल सुवण्णु तं वइ रहिउ, णाणिउ मइ अण्णु ण कोवि गहिउ।

इसलिये ज्ञानी जन इस काव्य-व्यापारको देखकर कोप न करें ?

यहाँपर सहज ही प्रश्न उठता है कि जब तुम अज्ञानी हो और इस काव्य-व्यापारको जानते-समझते नहीं हो तब काव्य-रचना क्यों कर रहे हो ? रचनाकारका उत्तर है—

जइ दिणयरु णहि उज्जोउ करइ, ता किं खुज्जोअउ णउ फुरइ।
जइ कोइल रसइ सुमहुरवाणि, किं टिट्ठिर हइ तुण्हंतु ठाणि।
जइ वियसइ सुरहिय चंपराउ, किं णउ फूलइ किसुय बराउ।
जइ पडहु विवज्जइ गहिरणाउ, ता इयरु म वज्जउ तुच्छ भाउ।
जइ सरवरि गमइ सुहंसु लील, किं णउ धरि पंगणि बहु सवील।
मण मित्त मुयहि तुहु कायरत्तु, करि जिणहु भत्ति हय दुव्वरित्तु।
बहु विणउ पयासिवि सज्जणाह, किं ण्हाण णु करि खल्लयणगणाह॥

अर्थात् यदि दिनकर (सूर्य) प्रकाश न करे तो क्या खद्योत (जुगनू) स्फुरण न करे ? यदि कोयल सुमधुर वाणीमें आलाप भरती है तो क्या टिट्ठिरी मौन रहे ? यदि चम्पक पुष्प अपनी सुरभि चारों ओर प्रसारित करता है तो क्या बेचारा टेसूका फूल नहीं फूले ? यदि नगाड़े गम्भीर नाद करते हैं तो क्या अन्य वाद्य वादित न हों ? यदि सरोवरमें हंस लीला करते हैं तो क्या घरके आँगनमें अनेक सवील (अबाबील ?) पक्षी क्रीड़ाएँ न करें ? इत्यादि।

कविने अपने परिचयके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं लिखा। केवल सन्धिके अन्तके उल्लेखसे यह पता चलता है कि वे इल्लिराजके पुत्र थे। इसी प्रकारसे अन्तिम प्रशस्तिसे स्पष्ट रूपसे ज्ञात होता है कि वे दिल्लीके आसपासके किसी गाँवके रहने वाले थे। उन्होंने इस काव्यकी रचना योगिनीपुर (दिल्ली) के श्रावक विद्वान् साधारण की प्रेरणासे की थी। उन दिनों दिल्लीके सिंहासनपर शाहनशाह बाबरका शासन था। ग्रंथका रचना काल विक्रम संवत् १५८७ है।^१ इस काव्य रचनाका ग्रंथ प्रमाण लगभग ५००० कहा गया है। पाँच सहस्र श्लोक प्रमाणसे रचना अधिक ही हो सकती है, कम नहीं है। क्योंकि तेरह सन्धियोंकी रचना अपने कायमें कम नहीं है।

काव्यमें निबद्ध तेरह सन्धियोंमें वर्णित संक्षिप्त विषय-वस्तु इस प्रकार है—

(१) प्रथम सन्धिमें मगध देशके सुप्रसिद्ध शासक राजा श्रेणिक और उनकी रानी चेलनाका वर्णन है। राजा श्रेणिक अपने युगके सुविदित तीर्थंकर भगवान् महावीरके समवसरण (धर्म-सभा) में धर्म-कथा सुननेके लिए जाते हैं। वे भगवान्की वन्दनाकर गौतम गणधरसे प्रश्न पूछते हैं। १२ कडवकोंमें समाहित प्रथम सन्धिमें इतना ही वर्णन है।

(२) दूसरी सन्धिमें विजयार्थ पर्वतका वर्णन, श्री अर्ककीर्तिकी मृत्ति-साधनाका वर्णन तथा श्री विजयांकका उपसर्ग-निवारण-वर्णन है। इस सन्धिमें कुल २१ कडवक हैं।

(३) तीसरी सन्धिमें भगवान् शान्तिनाथकी भवावलिका २३ कडवकोंमें वर्णन किया गया है।

(४) चतुर्थ सन्धि २६ कडवकोंमें निबद्ध है। इसमें भगवान् शान्तिनाथके भवान्तरके बलभद्रके जन्मका वर्णन किया गया है। वर्णन बहुत सुन्दर है।

(५) पाँचवी सन्धिमें १६ कडवक हैं। इसमें वज्रायुध चक्रवर्तीका वर्णन विस्तारसे हुआ है।

(६) छठी सन्धि २५ कडवकोंकी है। श्री मेघरथकी सोलह भावनाओंकी आराधना और सर्वार्थ-सिद्धिगमनका वर्णन मुख्य रूपसे किया गया है।

(७) सातवीं सन्धिमें भी २५ कडवक हैं। इसमें मुख्यतः भगवान् शान्तिनाथके जन्माभिषेकका वर्णन है।

(८) आठवीं सन्धि २६ कडवकोंकी है। इसमें भगवान् शान्तिनाथके कैवल्य प्राप्तिसे लेकर समवसरण-विभूति-विस्तार तकका वर्णन है।

(९) २७ कडवकोंकी इस सन्धिमें भगवान् शान्तिनाथकी दिव्य-ध्वनि एवं प्रवचन-वर्णन है।

(१०) दसवीं सन्धिमें केवल २० कडवक हैं। इसमें तिरैसठ महापुरुषोंके चरित्रका अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन है।

(११) ३४ कडवकोंकी यह सन्धि भौगोलिक आयामोंके वर्णनसे भरित है, जिसमें केवल इस क्षेत्रका ही नहीं सामान्य रूपसे तीनों लोकोंका वर्णन है।

१. आयह् गंधपमाणु वि लक्खिउ, ते पाल सयइं गणि कइय ण अक्खिउ ।

विण्हेण वि ऊघा पुत्तएण, भूदेवेण वि गुणमणजुएण ।

लिहियाउ चित्तेण वि सावहाणु, इहु गंधु विवुह सर जाय भाणु ॥

विक्कमरायहु ववगय कालइ, रिसिवसु सर भूय वि अंकालइ ।

कत्तिय पढम पक्खि पंचमि दिणि, हुउ परिपुण्ण वि उगंतइ इणि ॥

—अन्त्य प्रशस्ति

१६२ : अगरचन्द नाहटा अभिनन्दन-ग्रन्थ

(१२) १८ कडवकोंकी इस सन्धिमें भगवान् शान्तिनाथके द्वारा वर्णित चरित्र अथवा सदाचारका वर्णन किया गया है ।

(१३) अन्तिम तेरहवीं सन्धिमें भगवान् शान्तिनाथका निर्वाण-गमनका वर्णन १७ कडवकोंमें निबद्ध है ।

इस प्रकार इस काव्यका वर्ण्य-विषय पौराणिक है, जो लगभग सभी पौराणिकतासे भरित रचनाओंमें एक साँचेमें रचा गया है । इसमें कथा-वस्तु उसी प्रकारसे सम्पादित है । उसमें कोई विशेष अन्तर परिलक्षित नहीं होता ।

कथा-वस्तुकी दृष्टिसे भले ही काव्यमें कोई नवीनता लक्षित न हो, किन्तु काव्य-कला और शिल्पकी दृष्टिसे यह रचना वास्तवमें महत्त्वपूर्ण है । आलोच्यमान रचना अपभ्रंशके चरितकाव्योंकी कोटि की है । चरितकाव्यके सभी लक्षण इस कृतिमें परिलक्षित होते हैं । चरितकाव्य कथाकाव्यसे भिन्न है^१ । अतएव पुराणकी विकसनशील प्रवृत्ति पूर्णतः इस काव्यमें लक्षित होती है । प्रत्येक सन्धिके आरम्भमें साधारणके नामसे अंकित संस्कृत श्लोक भी विविध छन्दोंमें लिखित मिलता है । जैसे कि नवीं सन्धिके आरम्भमें—

सुललितपदयुक्ता सर्वदोषैर्विमुक्ता, जडमतिभिरगम्या मुक्तिमार्गं सुरम्या ।

जितमदनमदानां चारुवाणी जिनानां, परचरितमयानां पातु साधारणानाम् ।

इसी प्रकार ग्यारहवीं सन्धिके आरम्भमें उल्लिखित है—

कनकमयगिरीन्ध्रे चारुसिंहासनस्थः प्रमुदितसुरवृन्दै स्नापितो यः पयोभिः ।

स दिशतु जिननाथः सर्वदा सर्वकामानुपचितशुभराशेः साधु साधारणस्य ॥१०॥

जिस समय शान्तिनाथके मानसमें वैराग्य भावना हिलोरें लेने लगती हैं और वे घर-द्वार छोड़नेका विचार करते हैं तभी स्वर्गसे लोकान्तिक देव आते हैं और उन्हें सम्बोधते हैं ।

चित्तइ जिणवरु णिय मणि जामवि, लोयंती सुर आगइ तामवि ।

जय जयकारु करंति णविय सिर, चंगउ भाविउ तिहुयण णेसर ।

कि भगवन् ! आप तीर्थका प्रवर्तन करनेवाले हैं और भविकजनोंके मोह-अन्धकारको दूर करनेवाले हैं ।^२

अपभ्रंश के अन्य प्रबन्धकाव्योंकी भाँति इस रचनामें भी चलते हुए कथानकके मध्य प्रसंगतः गीतों की संयोजना भी हुई है । ये गीत कई दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण हैं । उदाहरणके लिए—

अइ महसत्ती वर पणत्ती, मारुयगामिणि कामवि रुविणि ।

हुयवह थंभणि णीरुणिसुंभणि, अंधीकरणी आयहु हरणी ।

सयलपवेसिणि अविआवेसिणि, अप्पडिगामिणि विविहविभासिणि ।

पासवि छेयणि गहणीरोयणि, वलणिद्धाडणि मंडणि ताडणि ।

मुक्करवाली भीमकराली, अविरल पह्यरि विज्जुल चलयरि ।

देवि पहावइ अरिणिट्ठावइ, लहुवर मंगी भूमि विभंगी ।

१. कथाकाव्य और चरितकाव्यमें अन्तर जाननेके लिए लेखकका शोधप्रबन्ध द्रष्टव्य है—‘भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंश कथा-काव्य’, पृ० ७६-७९ ।

२. तिथ्यपवत्तणु करहि भडारा, भवियहं फेडहि मोहंधारा ।

गय लोयंतिय एम कहेविणु, ता जिणवरिण भरहु घर देविणु । सन्धि ९, कडवक १६ ।

एक अन्य प्रकारके गीतका निदर्शन है—

सरोवरं पफुट्ट कंजरेण पिजरं, समीयरं सगज्ज उव्वडं सुसायरं ।
वरं सुआसणं मयारि रूव भीसयं, सरं मयंस दित्तयं सुदेव गेहयं ।
अहिंदा मंदिरं सुलोयणित्त सुंदरं, पकत्ति जुत्तयं सुरण्ण संचयं वरं ।
ण तित्ति इंधणं हुयासणं पलित्तयं, अधूमजाल देवमग्गु णं गिलंतयं ।

एक अन्य रागका गीत पठनीय है—

हुल्लरु सुरवइ मण रंजिएण, हुल्लरु उवसग्ग विहंजिएण ।
हुल्लरु मुणिमण संतोसिएण, हुल्लरु भवियण गण पोसिएण ।
हुल्लरु तिल्लोयहु विहिय सेव, हुल्लरु ईहिय दय विगय लेव । ८, २

इस प्रकारके अन्य गीतोंसे भी भरित यह काव्य साहित्यका पूर्ण आनन्द प्रदान करता है । एक तो अपभ्रंश भाषामें और विशेषकर इस भाषामें रचे गये गीतोंमें बलाघातात्मक प्रवृत्ति लक्षित होती है । आज तक किसी भी भाषाशास्त्री तथा अपभ्रंशके विद्वान्का ध्यान इस ओर नहीं गया है । किन्तु अपभ्रंशके लगभग सभी काव्योंमें सामान्यरूपसे यह प्रवृत्ति लक्षित होती है । उदाहरण के लिए—

इक्के वुल्लाविउ मुखगामि, इक्के विहसाविउ भुवणसामि ।
इक्के गलिहार विलंवियउ, इक्के मुहेण मुहु चुंवियउ ।

किन्तु बलाघात उदात्त न होकर किंचित् मन्द है । इसी प्रकारका अन्य उदाहरण है—

सुय सिरिदत्ता जणिय पहिल्ली, पंगु कुंठि अण्णक्क गहिल्ली ।
पुणु वहिरी कण्ण ण सुणइ वाय, पुणु छट्ठी खुज्जिय पुत्ति जाय ।

तथा—

आराहिवि सोलहकारणाइ, जे सिवमंदिर आरोहणाइ ।
तिल्लोक्कचक्क संखोहणाइ, संपुण्ण तवें अज्जिय विसेण ।

एवम्—

जेट्टु बहल वारिस जाणिज्जहु, माहहु सिय तेरसि माणिज्जहु ।
जेट्टु बहल चउदसि जाणहु, पइसाहहु सिय पडिव पमाणहु ।
मगसिरहं दिय चउदसि जाणिया, पुणु एयारसि जिणवर काणिया ।

संगीतात्मक ताल और लयसे समन्वित पद-रचना देखते ही बनती है । यथा—

झरंति दाण वारि लुद्ध मत्त भिगयं, गिरिक्ख एसु दंति वेयदंत संगयं ।
अलद्ध जुज्झु ठिक्करंतु सेयवणयं, घरम्मि मंद संपविस्समाणु गोवयं ।
पउव्विभयं कमं चलं व पिगलोयणं, विभा सुरंधु लंतकं व केसरं घणं ।
सणंकरं तुयंतु संतु लंब जीहयं, पकोवयं पलित्तु पिच्छए सुसीहयं ।

काव्य भाव और भाषाके सर्वथा अनुकूल है । भावोंके अनुसार ही भाषाका प्रयोग दृष्टिगत होता है । फिर भी, भाषा प्रसाद गुणसे युक्त तथा प्रसंगानुकूल है । जैसे कि—

कालाणलि अप्पउ किणि णिहित्तु, आसीविसु केण करेण छित्तु ।
सुरगिरि विसाणु किणि मोडियउ, जममहिससिगु किणि तोडियउ ।
जो महु विमाण थंभणु करेइ, सो णिच्छय महु हत्थें मरेइ ।

१६४ : अगरचन्द नाहटा अभिनन्दन-ग्रन्थ

प्रसंगतः अमर्ष संचारी भाव विभावसे संयुक्त होकर रोषके आवेगके साथ वीर रसका स्फुरण कर रहा है। इसी प्रकार अन्य रसोंसे युक्त होने पर भी रचना शान्तरस की है।

आलोच्यमान काव्यमें कई सुन्दर वर्णन हैं। प्रस्तुत है मगध देशका वर्णन—जहाँ पर सरोवर कमल-नालोंसे सुशोभित हैं, श्रेष्ठ हाथी जहाँ पर संचार करते हैं और राजहंश उड़ानें भरते हैं। जहाँ पर क्रीड़ागिरि रति-रसका निधान है और देव-मिथुन जहाँ पर लता-मण्डपोंमें क्रीड़ाएँ किया करते हैं। जलवाहिनी सरिता जहाँ पर अतिशय जल-प्रवाहके साथ बहती है मानो कामिनी-कुल पतियोंके साथ विचरण करता हो। जहाँ पर नन्दन-वन फल-फूलोंसे भरित हैं मानो भू-कामिनी घने यौवनसे सुशोभित हो रही हो। जहाँके गो-कुलोंमें गायोंके स्तनोंसे दुग्ध झर रहा है और चपल बछड़े अपनी पूँछें उठाकर दुग्ध-पान कर रहे हैं।

कविके शब्दोंमें—

तहु मज्झि सुरम्मउ मगह्देसु, महिकामिणि किउ णं दिव्वेसु।
जहि सरवर सोहहि सारणाल, गयवर डोहिय उड्डिय मराल।
जहि कीलागिरि रइरस आणिहण, लइमंडवि कीलिर देवमिहुण।
जलवाहिणि गणु जलु वहलु वहइ, णं कामिणिउलु पइसंगु गहइ।
जहि पंदणवण फुल्लिय फल्लाई, णं भूकामिणि जुव्वणु घणाइ।
जहि गोउलि गोहणु पय खिरंति, करि पुच्छ चवल वच्छा पिवंति। (१,७)

इसी प्रकार स्वयंवर-मण्डपमें सुलोचनाके द्वारा मेघेश्वरके कण्ठमें जयमाला निक्षिप्त करने पर अर्ककीर्ति रोषके साथ उठ खड़ा होता है, मेघेश्वर भी दर्पके साथ युद्धके लिए उठ बैठता है। घमासान युद्ध होता है। युद्धका चित्र है—

अक्ककित्ति मणु दुवणह चालिउ, दुवणु वि कत्थण चंगउ भालिउ।
तियरयण समाणी एह कण्ण, सामिहि सुउ मुइ कुलेइ अण्ण।
ता जाइउ संगरु अइ रउद्दु, उट्ठिउ मेहेसरु वेरि मद्दु।
बहु णरवर तज्जिय वाणसंधि, रवि कित्ति लयउ जीवंतु वंधि। (२,१९)

वस्तुतः उक्त पंक्तियोंमें युद्धका वर्णन न होकर उसकी तैयारीका उल्लेख मात्र है। पढ़ने पर यह लगता है कि अब जम कर युद्ध होगा, किन्तु कवि कुछ ही पंक्तियोंमें युद्धोत्तर स्थितिका वर्णन भी साथमें कर देता है। इसका कारण यही है कि कथानकमें गतिशीलता नहीं है। बहुत ही बँधी हुई बातें कविके सामने हैं, जिनका साहित्यके रूपमें प्रस्तुतीकरण करना कविका उद्देश्य प्रतीत होता है। अतएव वस्तुगत विविध आयामोंका भली-भाँति चित्रण नहीं हो सका है। किन्तु इसका यह भी अर्थ नहीं है कि रचनामें मार्मिक स्थल नहीं हैं; परन्तु कम अवश्य है।

काव्यके वर्णनोंमें जहाँ-तहाँ लोक-तत्त्वोंका सहज स्फुरण परिलक्षित होता है। उदाहरणके लिए—

जहाँ पर नदियाँ कुलटा नारीके समान वक्र गतिसे बहनेवाली हैं, निकटके गाँव इतने पास हैं कि मुर्गा उड़कर एक गाँवसे दूसरे गाँवमें सरलतासे पहुँच सकता है। जहाँके सरोवरोंमें विशाल नेत्रोंकी समता करनेवाले बड़े-पत्तोंसे युक्त कमल विकसित थे। जहाँ पर गोधन, गोरस आदिसे समृद्धि-सम्पन्न हैं। और जहाँ पर विख्यात उद्यान-वन आदि हैं। जहाँका क्षेत्र अन्न-जल आदिसे परिपूर्ण होनेके कारण सदा सुखदायक है। कविके ही शब्दों में—

इतिहास और पुरातत्त्व : १६५

जहि तीरिणि गणु कुलटा समाणु, जहि वसहि गाम कुक्कुड उडाण :
जहि सरस कमल कमलविसलच्छि, जहि गोवासगोहण गोहण सवच्छि ।
उज्जाण सवणवण जहि सविक्ख, जहि खित्त सकणजल जलसहक्ख ।
जहि णिच्च वहेइ चउत्थु कालु, तहु देसहु वण्णणु को सुसालु । (५,१)

रचना प्रासादिक और सालंकारिक है । भाषाकी दृष्टिसे रचनामें क्रियापदोंकी तथा कृदन्तोंकी प्रचुरता है, जो हिन्दी भाषायुगोन प्रवृत्तिकी द्योतक है । कुछ नये शब्द इस प्रकार हैं—

उल्लसित—उल्लसित (९,१२)
टालणु—कम्पित होना, अपने स्थानसे हटना (९,१०)
उज्जालणु—उजाला करना, प्रकाशित करना (९,१०)
संडु (षण्ड, सं०)—समूह (९,९)
दसमउ कमलसंडु कर दल उज्जलु । (९,९)
कुच्छिउ—कुत्तिसत (९,३)
छिक (?)
संघरहि छिक जं भाइएण । (९,३)
तहि—तहीं, वहीं (९,४)
कोइ ण राउ रंकु तहि दीसइ (९,४)
सिय चंदकंति सुन्दर मुहेण, उज्जल चामीयर कुंचुएण । (९,२)
गिरिवरसुन्दर मणहर घणेहि, कंदलविलास बाहुल्लएहि । (९,२)
खड (षड्, सं०)—छह (८,२६)
तप्पर—तत्पर (८,२४)
मणुयतिरिय जिणसेवण-तप्पर । (८,२४)

इस प्रकार भाषा (बलाघात, नाद-योजना, नये शब्दोंका प्रयोग), प्रसाद शैली तथा गीतादि संयोजना आदिकी दृष्टिसे उक्त रचना महत्त्वपूर्ण है । इस अध्ययनसे यह भी स्पष्ट होता है कि छठी शताब्दी तक अनवच्छिन्न रूपसे अपभ्रंशके प्रबन्धकाव्योंकी परम्परा प्रचलित रही है, जिसमें काव्यात्मक विधाके रूपोंमें कथाकाव्य और चरितकाव्य जैसी स्वतन्त्र विधाएं भी जनविश्रुत रही हैं ।

अभी तक सांस्कृतिक दृष्टिसे भी इस प्रकारकी रचनाओंका अध्ययन नहीं किया गया है । अतः इस ओर भी विद्वानोंका ध्यान जाना चाहिए ।